International Journal of Advanced Research in Engineering Technology & Science
ISSN: 2349-2819
Impact Factor: 7.10
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
Email: editor@ijarets.org Volume-11 Issue-11 November-2024 www.ijarets.org

वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विकास

Sachin Kumar Yadav
Research Scholar
B.R.A.Bihar University, Muzaffarpur
Dr. Abhay Kumar, Professor & Principal(R.L.S.Y. College, Bettiah)

शोध पत्र

वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावी अवधारणा के रूप में विकसित हुआ है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संस्कृति के मूल तत्वों को अपने राष्ट्र के प्रगति के लिए एक अनिवार्य तत्व के रूप में देखता है। यह मानवता के विकास का प्रमुख पोषक तत्व है। राष्ट्र, व्यक्ति एवं मानव जाति के मध्य एक अनिवार्य शर्त्त के रूप में स्वीकार किया जाता है। राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण स्वतंत्रता, सहिष्णुता, समानता एवं व्यक्गित अधिकारों के उदाहरण मूल्यों के संगत में होना चाहिए। पाश्चात्य विचारक जॉन स्टुअर्ट मिल राष्ट्रीय पहचान को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य मानते है। उनका मानना है कि एक अर्थपूर्ण एवं स्वायत्त जीवन के लिए तथा उदार एवं लोकतांत्रिक राजनीति के लिए राष्ट्रीय अस्मिता का बना रहना बहुत ही आवश्यक है।

कुछ विचारक वैश्वीकरण को एक आर्थिक अवधारणा मानते है। कुछ इसे सांस्कृतिक अदान–प्रदान के संदर्भ में निकालते है। वही कुछ इसे एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखते है। परन्तु वास्तव में वैश्वीकरण एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें मुख्यतः आर्थिक, राजनीति, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम आते है।

ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग सबसे पहले Toward New Education *नाम दस्तावेज में किया गया था, जिसका प्रकाशन 1930 ई0 में हुआ था। इस दस्तावेज में इस शब्द का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति के समग्र अनुभवों के अर्थ के रूप में किया गया था। तब से लेकर 1970 ई0 के दशक तक यह शब्द प्रयोग में तो था लेकिन इसे लोकप्रियता नहीं मिली थी। 1980 ई0 के दशक के अंतिम वर्षों में इस शब्द को अर्थशास्त्री थियोडोर लेविट (*Theodore Levitt*) ने लोकप्रिय बनाया।*

वैश्वीकरण की अभिव्यक्ति गत् 25 वर्षों में राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्रमुखता से हो रही है। भले ही इसके अर्थ तथा निहितार्थ को लेकर विद्वानों में मतभेद हो लेकिन इसके

सर्वव्यापी प्रभाव को सभी स्वीकार करते है। वर्तमान समय में विद्वानों और समीक्षकों के मध्य चर्चा का विषय वैश्वीकरण व उसका प्रभाव है। सामान्य अर्थों में वैश्वीकरण का तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसके अन्तर्गत राष्ट्रों व समुदायों के मध्य वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, व्यक्तियों व विचारों का आदान–प्रदान व अंतःक्रिया में तीव्र वृद्धि होती है। यह वृद्धि अंतः क्रिया की बारंबारता और उसकी गति दोनों में देखी जाती है। ऐसा नहीं है कि पहले राष्ट्रों और समुदायों के बीच विचारों और वस्तुओं का आदान–प्रदा नहीं होता था। इसका मतलब यह है कि यह आदान–प्रदान व अंतःक्रिया मात्रात्मक व गत्यात्मक दोनों दृष्टियों से इतनी व्यापक हो गया है कि उसमें गुणात्मक परिवर्तन देखा जा सकता है।

कुछ विचारकों ने वैश्वीकरण को परिभाषित करने का प्रयास किया है, जो बहुत हद तक इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने में सहायक है। एंथनी गिडेन्स ने अपनी पुस्तक *"The Consequences of Modernity"* में वैश्वीकरण को परिभाषित करते हुये लिखा है कि–

"The intensification of worldwide social relation which link distant localities in such a way that local happening are shaped by events occurring many miles away and vice versa"

रोलैण्ड राबर्टसन के अनुसार वैश्वीकरण वह अवधारणा है, जो विश्व के संक्षिप्तीकरण और वैश्विक चेतना की प्रवणता को इंगित करती है। जेम्स रोजेनाऊ ने वैश्वीकरण की संचालक शक्ति के रूप में तकनीक को देखने का प्रयास किया है। उन्होनें कहा कि यह तकनीकी अथवा प्रौद्योगिक है, जो स्थानीय और अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों की परस्पर निर्भरता को बढ़ावा देती है। जोसेफ स्टिगलिट्स ने अपनी पुस्तक *"Making Globalization Work"* में लिखा है कि वैश्वीकरण के अन्तर्गत बहुत सी चीजों का समावेश है, जैसे कि विचारों एवं ज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह, संस्कृतियों का आदान–प्रदान, विश्व नागरिक समाज और विश्व पर्यावरण आन्दोलन। परन्तु मुख्यतः वैश्वीकरण का अर्थ आर्थिक वैश्वीकरण से है, जिसके अन्तर्गत विश्व के राष्ट्रों के बीच पूँजी, वस्तु, सेवा एवं श्रम के बढ़ते हुए प्रवाह के द्वारा आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया को बल मिला है।

वस्तुतः उदारीकरण व निजीकरण वैश्वीकरण का आधार है। उदारीकरण का तात्पर्य है कि अर्थव्यवस्था और समाज कल्याण के क्षेत्रों में राज्य के नियंत्रण को कम करके उसे उदार बनाया जाय। इसी तरह निजीकरण का तात्पय्र है कि सामाजिक और आर्थिक जीवन में निजी क्षेत्र की भूमिका तथा हिस्सेदारी को बढ़ाया जाय। अतः वैश्वीकरण का वैचारिक झुकाव पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की ओर है। तकनीकी, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों से अतिरिक्त वैश्वीकरण की प्रवणता सोवियत संघ के विघटन के बाद सामाजवादी विचारधारा के अवसान तथा उस पर नव–उदारवादी पूँजीवाद के श्रेष्ठता के उद्‌घोष

है। इस को फ्रांसिस कुकुयाता ने इतिहास के अंत (End Of History) की संज्ञा दी है। निजीकरण और उदारीकरण को विश्व स्तर पर फैलाने का एक प्रमुख साधन वैश्वीकरण है। वर्तमान वैश्विक परिवेश का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसे वैश्वीकरण ने प्रभावित न किया हो।

जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर वैश्वीकरण के प्रभाव का सम्बन्ध है, यह अतिव्यापक, दीर्घगामी एवं सामरिक प्रकृति का है। वैश्वीकरण ने न केवल राष्ट्रों की विदेश नीति व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को, बल्कि उनकी घरेलू नीतियों को भी प्रभावित किया है। इस प्रभाव की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कोई भी राष्ट्र स्वेच्छा से स्वयं को इस प्रक्रिया से दूर नहीं रख सकता, क्योंकि राष्ट्रों के मध्य अंतः संबंध और अंतः निर्भरता बहुत अधिक बढ़ गये है। वैश्वीकरण वस्तुतः राष्ट्रों तथा समूहों में जुड़ाव की प्रक्रिया है। संचार के आधुनिक साधनों द्वारा इस जुड़ाव को गति प्राप्त होती है।

वैश्वीकरण ने राष्ट्रवाद को किस तरह प्रभावित किया है और क्या वैश्वीकरण ने राष्ट्रवाद के महत्व को समाप्त कर दिया है। इस पर विचार करने से पूर्व राष्ट्रवाद को समझना आवश्यक है। राष्ट्रवाद एक भावना (Sentiment) भी और विचारधारा (Ideology) भी है। एक भावना के रूप में यह अपने राष्ट्र के प्रति लगाव को व्यक्त करता है। एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद यह माँग करता है कि राज्य का ढांचा और राजनीतिक संगठन राष्ट्रत्व (Nationhood) की नींव पर खड़े होने चाहिए, जो लोग अपने आपको एक स्वाभाविक समुदाय के रूप में पहचानते है और एक राष्ट्र के सदस्य होने का दावा करते है, उन्हें एक स्वाधीन राजनीतिक प्रणाली के रूप में रहना चाहिए और विश्व व्यवस्था के अन्तर्गत उन्हें अन्य राष्ट्रों के साथ बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। किसी राष्ट्र को किसी अन्य राष्ट्र के प्रभुत्व या आधिपत्य के अधीन नहीं रखा जाना चाहिए।

राष्ट्रवाद को चाहे एक भावना के रूप में देखा जाय या विचारधारा के रूप में इसकी विस्तृत व्याख्या राष्ट्र की परिभाषा पर आश्रित है। 'राष्ट्र' शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द नेशियो (Nation) से हुई है, जिसका अर्थ जन्म होता है। जिसका तात्पर्य लोगों के ऐसे समूहों से है, जिनमें एकता स्थापित करने का आधार उनके जन्म या जन्म–स्थान में निहित है। प्रश्न यह है कि किसी जन–समूह को किन–किन लक्ष्णों के आधार पर एक राष्ट्र के रूप में मान्यता दी जा सकती है, ऐसे अनेक लक्षण गिनाये जा सकते है। परन्तु मानव सभ्यता और आधुनिक राज्य का जितने विविध रूपों में विकास हुआ है, उन्हें ध्यान में रखते हुये इन लक्षणों की कोई प्रमाणिक और सर्वमान्य सूची तैयार नहीं की जा सकती। किसी जन–समूह को राष्ट्रत्व प्रदान करने के अनेक आधार हो सकते है, जैसे कि सामान्य भाषा, जाति, धर्म, रिति–रिवाज, संस्कृति इत्यादि। एक आधार यह हो सकता है कि उस समूह के सदस्य एक ही भू–क्षेत्र में एक साथ

रहते हो और एक ही कानून से शासित हो। इन सब लक्षणों पर विचार करने पर वास्तविक उदाहरणों में इनके अपवाद ढूँढ़ना मुश्किल नहीं होगा।

जहाँ तक सामान्य भाषा का सवाल है, ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते है, जहाँ भिन्न–भिन्न राष्ट्रों में एक ही भाषा बोली जाती है या एक राष्ट्र में अनेक भाषाएँ बोली जाती है। उदाहरण के लिए अंग्रेज, आस्ट्रेलियन और अमेरिकी भिन्न–भिन्न राष्ट्र के है, परन्तु ये तीनों मुख्यतः अंग्रेजी भाषाभाषी है। स्विस लोग चार भाषाओं का प्रयोग करते है, फिर भी एक राष्ट्र के सदस्य है। यह भी जरूरी नहीं कि एक राष्ट्र के लोग एक ही जाति या एक ही धर्म के हों। अमेरिका में ईसाई और यहूदी एक ही राष्ट्र के सदस्यों के रूप में मिल–जुलकर रहते है, भारत एवं नेपाल हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, बौद्ध इत्यादि एक ही राष्ट्र की छत्रछाया में रहते है।

जब राष्ट्रत्व के बाहय लक्षणों में इतनी भिन्नता पाई जाती है, तब किसी जन–समूह को किस आधार पर एक राष्ट्र के रूप में मान्यता दी जाय। जहाँ तक एक ही भू–क्षेत्र में एक साथ रहने का सवाल है, वह भी इसकी जरूरी शर्त्त नहीं है। दूर–दूर तक बिखरे हुये लोगों में भी एक राष्ट्र की भावना पनप सकती है। इसके प्रमुख उदाहरण है– यहूदी, पोलिस, जर्मन और आयरिश लोग। इन सब विविधाताओं को देखते हुये राष्ट्रत्व के निर्णय और राष्ट्रवाद की भावना का एक ही उपयुक्त आधार उभरकर सामने आता है, वह यह है कि प्रस्तुत जन–समूह के सदस्य अपने आपको एक स्वाभाविक समुदाय मानते हुये एक राष्ट्र के रूप में पहचानते हो। इस दृष्टि से वे अपनी सामान्य राजनीतिक आकांक्षाओं, सामान्य हितों, सामान्य इतिहास और सामान्य नियति की चेतना के कारण एकता के सूत्र में बँधे हुये अनुभव करते है। इस तरह जब किसी विस्तृत जन–समूह के सदस्य भिन्न–भिन्न जातियों, धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों इत्यादि से सम्बन्ध रखते हुये भी एक ही राज्य के रूप में संगठित होते है या संगठित होने की आकंक्षा रखते है और ऐसी यथार्थ या काल्पनिक सत्ता के प्रति निष्ठा से बँधे हुये अनुभव करते है, तब वे एक राष्ट्र के रूप में अपनी पहचान बनाते है। राष्ट्रवाद से प्रेरित लोग अपने राष्ट्र की परम्परा और राष्ट्र के इतिहास पर गर्व अनुभव करते है और उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार हो जाते है।

जब बात आती है वैश्वीकरण और राष्ट्रवाद के सम्बन्धों की तो इस पर मुख्यतः तीन प्रकार के तर्क सामने आते है। पहला तर्क यह है कि बढ़ते अन्तनिर्भरता और राष्ट्रों के बीच कमजोर होते अवरोधों के कारण वैश्वीकरण ने राष्ट्रवाद को समाप्त कर दिया। इसके साथ ही सीमाओं और दूरियों का महत्व कम हो जाने से लोग एक–दूसरे से सम्पर्क में आ रहे है। इससे राष्ट्रीय विभेद समाप्त हो जाते है या कम हो जाते है। दूसरा तर्क है कि वैश्वीकरण और राष्ट्रवाद में मिश्रित सम्बन्ध है। दोनों एक–दूसरे

को बढ़ाते है। यह तर्क इस बात पर जोर देता है कि राष्ट्र–राज्य की व्यवस्था वैश्वीकरण से पहले स्थापित हुई और प्रत्येक राज्य को वैश्विक व्यवस्था में योगदान दिया है। वैश्वीकरण के अन्तर्गत अभी भी राष्ट्र–राज्य कार्य कर रहे है और वैश्विक व्यवस्था को आगे बढ़ा रहे है। तीसरा तर्क कहता है कि वैश्विकरण ने राष्ट्रवादी भावानाओं को बढ़ाया है।

वैश्वीकरण के प्रक्रिया ने राष्ट्रवाद को जबरदस्त चुनौती दी है। बीसवीं सदी के आखिरी दशक और इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में यह कहा जाने लगा कि दुनिया का एक वर्ग एक–सी भाषा बोलता है, एक–सा खाना खाता है और एक–सा पहनावों का प्रयोग करता है। उसके लिए राष्ट्रीय सीमाओं के कोई मायने नहीं रह गये है। इसके अलावा आर्थिक एकीकरण, बड़े पैमाने पर होने वाली लोगों की आवाजाही, इंटरनेट, सोशल मिडिया और मोबाईल फोन जैसी प्रौद्योगिक प्रगति ने दुनिया में फासलों को बहुत कम कर दिया है। ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है, जो अपने देश और सांस्कृतिक माहौल से दूर काम और जीवन की सार्थकता की तलाश में विश्व के किसी कोने में जाना चाहते है। इस नई परिस्थिति में कुछ विद्वानों ने माना कि वैश्वीकरण राष्ट्रवाद के पतन का कारण है कि राष्ट्रीय संरचनाओं के बजाय राष्ट्रों से परे जाने वाली आर्थिक और राजनीतिक गठजोड़ आने वाले समय में हावी होंगे।

इन दावों में सच्चाई तो है लेकिन आंशिक किस्म की। एक राजनीतिक ताकत के रूप में राष्ट्रवाद आज भी निर्णायक बना हुआ है। कई देशों में चल रहे सांस्कृतिक पुनरूत्थानवादी आन्दोलन, दुनियाभर में हो रही नस्ल, आव्रजन संबंधी बहस और आउटसोर्सिंग संबंधी विवाद का प्रमाण है। दुनियाभर में सरकारों के कामकाज का तरीका बदल रहा है। सरकारें बदल रही है। 19 नवम्बर, 2016 को The Economist *'लीग ऑफ नेशनलिस्ट' शीर्षक से छपा लेख इस सवाल की पड़ताल करता है कि पूरी दुनिया में राष्ट्रवाद का उभार क्यों हो रहा है?*

पिछले ढ़ाई दशक के इस वैश्वीकरण के दौर में लोगों के जीवन पर काफी असर डाला है। बेशक कुछ के लिए इसने अवसरों के द्वार खोले है और उनकी पूँजी बढ़ाई है पर ज्यादातर के लिए यह बेरोजगारी और गरीबी लेकर आया है। इसमें विजेता कुछ ही है, मगर गंवाने वाले अधिक। हर उभरती अर्थव्यवस्था में मध्य वर्ग और अत्याधिक धनाढ्य लोग बड़े विजेता बने है तो औद्योगिक देशों में कामगार व निम्न–मध्यवर्ग और विकासशील देशों में गरीब व हाशिये के लोग वंचितों में शामिल है। भले ही वैश्वीकरण इसकी एकमात्र वजह न हो, मगर यह एक ऐसा कारक जरूर है, जिसे नजर अंदाज कतई नहीं किया जा सकता है।

ये तमाम समस्याएँ 2008 की आर्थिक मंदी के बाद से और मुखर हुई है। अर्थव्यवस्थाएँ आज भी कमजोर है और धीमी गति से आगे बढ़ रही है। कुछ देश बेशक इससे बाहर आ गये है, मगर वहाँ रोजगार अब भी एक बड़ी समस्या है। वहाँ बेरोजगारी दर काफी ज्यादा है। यूरोपीय संघ के देशों में तो बेरोजगारी की औसत दर देश के कुल कार्य–बल से दस फिसदी तक अधिक है, जबकि यूनान व स्पेन में यह आँकड़ा 20 फिसदी तक का है। कुल मिलाकर कहे तो आर्थिक वैश्वीकरण ने तमाम देशों में समाज को आतंरिक तौर पर बाँटने का काम किया है। अर्थव्यवस्थाएँ बेशक वैश्विक हो सकती है, मगर राजनीतिक राष्ट्रीय ही होती है। वैश्वीकरण के खिलाफ प्रतिक्रिया उसी राजनीतिक नाखुशी का इजहार है, जिसका अंदेशा पहले से था। लोगों का मुख्यधारा के राजनीतिक दलों को लेकर गुस्सा है और इस भावना को भुनाने की क्षमता लोकलुभावन दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी नेताओं के पास है। यूरोपीय संघ से बाहर होने को लेकर ब्रिटेन में हुये संगह के नतीजे ने भी लोगों की इसी भावना को दिखाया है कि यूरोपीय संघ के साथ रहकर उन्होनें काफी कुछ गंवाया है।

अमेरिका में नवनिर्वाचित राष्ट्रपति डोनाल्ड जे0 ट्रम्प ने अपने भाषणों में अमेरिका के गौरव और मैक्सिको की सीमा रेखाओं पर दिवार खड़ी करने का नारा दिया है। दुनिया के कई देशों में इस तरह की बोली बोलने वालों के पीछे भीड़ आ रही है। इस तरह का राष्ट्रवाद आजकल हर जगह उभर रहा है। अपने देश के लगाव की यह शर्त ज्यादा मुखर होने लगी है कि आप किसी और देश से नफरत करते है। फ्रांस, जर्मनी, पोलैण्ड, आस्ट्रिया, डेनमार्क, फिनलैण्ड, नीदरलैण्ड, स्वीडन, रूस, तुर्की और फिलिपींस जैसे देशों में दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी पार्टियां तेजी से बड़ी ताकत बनती जा रही है।

इस प्रकार विभिन्न विश्लेषणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि राष्ट्र (भारत+नेपाल) तथा राष्ट्रवाद की अवधारणा मूलतः सांस्कृतिक तथा अध्यात्मिक, सामूहिक तथा विवेकपूर्ण, सनातन धर्म पर आधारित है। इसका मूल उसकी संस्कृति है, जो कि शेष विश्व में प्रचलित राष्ट्र की अवधारणा में सर्वथ अनुपस्थित है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा राष्ट्रीय हित इसके लिए अधिक मायने रखती है। यह मात्र राजनैतिक व भू–स्थैतिक एकता एवं संप्रभुता को आधार नहीं मानती वरना सांस्कृतिक एकता को उसका प्रमुख आधार मानती है। यह कभी भी सांस्कृतिक भिन्नता को राष्ट्र के लिए खतरा नहीं मानती है। यह भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक मूल्यों के बीच अस्तित्व की भावना के आधार पर यह राष्ट्र मूल्य को स्वीकार करता है। इसके सांस्कृतिक मूल्य ही इसे अखण्ड राष्ट्र के रूप में पूर्व से लेकर पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।

संदर्भ :–

1. *रामाकान्त सिंह का शोध प्रकाशन।*
2. *एस0 के0 टी0 का शोध पत्र।*
3. *गबा, ओ0 पी0 (2010) राजनीति–सिद्धांत की रूपरेखा।*
4. *बाजपेयी अरूणोदय (2012) का शोध पत्र।*
5. *बाजपेय, अरूणोदय (2012) समकालीन विश्व एवं भारतः प्रमुख मुद्दे और चुनौतियां, नई दिल्लीः डॉर्लिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्रा0 लि0।*
6. *Stiglizt, J (2003) Making Globalization Work, New Delhi: Penguin Books.*
7. *Rosenau, James.N.(1990), Turbulence in World Politics: A Theory of Change and Continuity, Princetion: Princetio Press.*
8. *Robertson, R (1992), Globlization: Social Theory and Global Culuture, London.*
9. *Giddens, A (1990), The Consequences of Modernity, Cambridge: Polity Press.*
10. *मिश्रा के0 के0 शुक्ला, सुभाष (2010), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धान्त, नई दिल्लीः अनामिका पब्लिशर्स।*